स्त्रीधन पर स्त्रियों का अधिकार

(धर्मशास्त्रीयविधि एवं भारतीय कानून के अनुसार)

*प्रो.शालिनी सक्सेना

सारः–

प्राचीनकाल में शासन व्यवस्था एवं न्यायव्यवस्था का संचालन राजा के द्वारा किया जाता था। उसके सहयोग के लिए पुरोहतों, आमात्यों एवं वृद्धों को नियुक्त किया जाता था, जो धर्म के अनुसार निर्णय में राजा का सहयोग करते थे। राज्य व्यवस्था का संचालन धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र द्वारा प्रतिपादित नीति निर्देशों से होता था लेकिन जब दोनों में गतिरोध होता था तो धर्म को ही प्रमाण माना जाता था। प्राचीन आचार्यों ने अट्ठारह तरह के विवाद प्रतिपादित किए हैं, जिनमें उत्तराधिकार सम्बन्धी विवाद 'दाय' नाम से कहे गए है। प्राचीनकाल में उत्तराधिकार का निर्णय करते समय याज्ञवल्क्य की मिताक्षरा, जीमूतवाहन के दायभाग आदि को न्यायालय में प्रमाणस्वरूप स्वीकार किया जाता था वर्तमान कानून भी धर्मशास्त्रीय व्यवस्थाओं का अनुगमन करते हैं। यहाँ उत्तराधिकार के प्रकरण में मात्र स्त्रीधन के सम्बन्ध में प्राचीन एवं वर्तमान नियमों का प्रतिपादन अभीष्ट है।

प्राचीन भारत की राज्यव्यवस्था में धर्म का सर्वोच्च स्थान रहा है। सामाजिक व्यवस्था के मूल में भी धर्म के नीति निर्देश समन्वित थे। सम्पूर्ण समाज एवं राज्यव्यवस्था का नियन्ता राजा भी धर्म से आबद्ध था और वह धर्मनिर्दिष्ट विधान में परिवर्तन करने में अधिकृत नहीं था। यद्यपि राजा को समस्त अधिकार प्राप्त थे फिर भी राजा से धर्म को उच्च स्थान प्राप्त था। अर्थशास्त्र में राजा को कानून निर्माण की स्वतन्त्रता दी गई है लेकिन धर्मशास्त्र में उसे यह अधिकार भी प्राप्त नहीं था। इसीलिए जहाँ धर्मशास्त्र व अर्थशास्त्र में परस्पर मत वैमत्य होता था तो धर्मशास्त्र को ही प्रमाण माना जाता रहा है। राजा ऐसा कोई कानून नहीं बना सकाता जो धर्मशास्त्र के विरुद्ध हो। प्राचीन काल में राजनीति प्रकाण्ड विद्वान्, श्रेष्ठ नैतिक आचरण वाले पुरोहितों के दिशानिर्देश में संचालित होती थी और वे धर्मानुकूल निर्णय में राजा का मार्गदर्शन करते थे। धर्मसम्बन्धी सम्पूर्ण व्यवस्थाएं पुरोहितों के पास थी और उन पर राजा का कोई अंकुश नहीं था। तत्कालीन न्याय व्यवस्था की सम्यक् परीक्षा के लिए वृद्धों की नियुक्ति की जाती थी। न्यायाधीश प्राड्विवाक कहलाता था। मनु एवं याज्ञवल्क्य ने न्यायालयों में चलने वाले विवादों के अट्ठारह प्रकार बताएं हैं उनमें दाय सम्बन्धी विवाद भी सम्मिलित हैं।
दीयते इति दायः। अर्थात् जो धन से सम्बन्ध होने के निमित्त मात्र से अन्य का स्वत्व हो जाए। नारद के अनुसार ''विभागोऽर्थस्य पित्र्यस्य प्रकल्पते। दायभाग इति प्रोक्तं तद्विवादपदं बुधैः।'' संयुक्त भारतीय परिवार की सम्पत्ति एवं स्वयं अर्जित सम्पत्ति में कोई भेद नहीं था। प्रत्येक परिवार के पुरुष के स्वामित्व में सम्पत्ति पर उसका पूर्ण अधिकार होता है। पुत्रों का उस पर न तो जन्म से अधिकार होता है और न वे पिता से विभाजन की मांग कर सकते हैं। पिता के जीवन काल में कोई सहदायिक नहीं होता ओर पिता की मृत्यु के बाद एकाधिक पुत्र या उनके पुत्र जीवित हों तो वे पितृधन के उत्तराधिकारी होते हैं। अपने जीवनकाल में पिता किसी भी प्रकार सम्पत्ति का विभाजन करें उसे चुनौती नहीं दी जा सकती। भाइयों में जब वास्तविक विभाजन होता था तो विधवा माँ को भी अंश प्राप्त होता था। वर्तमान कानून में भी पति की सम्पत्ति की अधिकारी प्रथमतः पत्नी को माना गया उसके बाद ही उसकी सन्तानें

उत्तराधिकार का दावा कर सकती हैं। दाय के दो प्रकार के भेद बताएं गए हैं सप्रतिबन्ध दाय एवं अप्रतिबन्ध दाय। इसको स्पष्ट करते हुए याज्ञवल्क्य ने कहा है– यत्र पुत्राणां पौत्राणां च पुत्रत्वेन पौत्रत्वेन च पितृधनं पितामहधनं च स्वं भवतीति अप्रतिबन्धो दायः। अर्थात् जहाँ पिता अथवा दादा का धन पुत्र अथवा पौत्रों को प्राप्त हो वहाँ कोई प्रतिबन्ध का हेतु उपस्थित नहीं होता अतः वह अप्रतिबन्ध दाय कहलाता है। पितृव्यभ्रात्रादीनां तु पुत्राभावे स्वाम्यभावे च स्वं भवतीति सप्रतिबन्धो दायः। अर्थात् जहा चाचा के अथवा भाई आदि के पुत्र रूप स्वामी का अभाव होने पर उनके धन पर अधिकार प्राप्त हो वहाँ उनके पुत्र आदि उत्तराधिकार में बाधक होने से वह सप्रतिबन्ध दाय कहलाता है। मिताक्षरा के अनुसार अपने पूर्वजों से प्राप्त सम्पत्ति अप्रतिबन्ध दाय कहलाती थी इसे ही सहदायिक सम्पत्ति भी कहा गया है। पूर्वजों के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति से प्राप्त या स्वयं अर्जित सम्पत्ति को सप्रतिबन्ध दाय कहा जाता है। वही दाय भाग के अन्तर्गत स्त्री के पास दो प्रकार की सम्पत्ति मानी गई है। एक स्त्रीधन जिस पर उस स्त्री का पूर्णाधिकार होता था और वह किसी भी प्रकार उसका व्यय एवं हस्तान्तरण करने का अधिकार रखती थी। उसकी मृत्यु के बाद वह सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियें को दी जाती थी। स्त्री सम्पदा में स्त्री का आजीवन अधिकार होता था। वैधानिक आवश्यकता के अलावा वह उसका अन्तरण नहीं कर सकती थी तथा उपभोग करते हुए सम्पत्ति को नुकसान नहीं पहुँचा सकती थी। उसकी मृत्यु के बाद वह सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियों को न देकर मृतक पुरुष के उत्तराधिकारी को दी जाती थी। स्त्रीधन और स्त्री सम्पदा की प्रकृति एक समान है। स्त्री के स्वामित्व में विद्यमान प्रत्येक सम्पत्ति स्त्रीधन नहीं है। मनु ने छः प्रकार का स्त्रीधन कहा हैः–

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि।

भ्रातृमात्पित्प्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्।।[i]

याज्ञवल्क्य ने स्त्रीधन का विवेचन करते हुए कहा हैः–

पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम्।

आधिवेदनिकाद्यं च स्त्रीधनं परिकीर्तितम्।।[ii]

स्त्री धन पर स्त्री का पूर्ण स्वामित्व होता है। वह उसका प्रबन्ध करने, उपभोग करने, व्यय करने आधिपत्य रखने में पूर्ण स्वतन्त्र होती थी। अपने जीवनकाल में उस सम्पत्ति को किसी को भी दे सकती थी। किस किस तरह का धन स्त्रीधन हो सकता है इस विषय में मनु ने कहा है कि विवाह काल में अग्नि के साक्षित्व में पिता आदि के द्वारा दिया गया, पितृगृह से पति के घर आते समय दिया गया, प्रेम सम्बन्धी किसी अवसर विशेष पर पति द्वारा दिया गया, भाई, माता, और पिता के द्वारा विविध अवसरों पर दिया गया इस प्रकार छः तरह का स्त्रीधन होता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में कहा गया है कि एक स्त्री की अलग से सम्पत्ति होती है तथा उसपर उसका पूर्ण अधिकार होता है। एक कन्या अपनी सम्पत्ति को विवाह के बाद साथ ले जाती है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के अनुसार पिता के यहाँ बड़ी हुई पुत्री, निःसन्तान विधवा को भी अपनी सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार मिलता है। याज्ञवल्क्य के अनुसार किसी स्त्री को अपने पिता, माता,भाई, पति तथा विवाह मण्डप में प्राप्त होने वाले उपहार स्त्रीधन माना गया है। पति द्वारा दूसरा विवाह करने पर पहली पत्नी को मिलने वाला धन भी स्त्रीधन माना गया है। विष्णु ने स्त्रीधन के निम्नलिखित स्रोत कहे हैंः–

1. अधिवैधानिक अर्थात् पति द्वारा पुनर्विवाह करने पर पहली पत्नी को दिया जाने वाला धन। याज्ञवल्क्य के अनुसार यदि पहली स्त्री के रहते पति दूसरा विवाह करें तो उस पहली स्त्री को दूसरे विवाह में व्यय किए

गए धन के बराबर आधिवेदनिक धन देवे यदि उसे स्त्रीधन मिला हो तो दूसरे विवाह के व्यय का आधा धन ही देना विहित है।[iii]

2. पति के सम्बन्धियों एवं मातापिता के सम्बन्धियों द्वारा विवाह के बाद दिए जाने वाले उपहार।
3. पुत्र अथ्वा अन्य सम्बन्धियों द्वारा दिए जाने वाले उपहार
4. आर्ष आदि विवाह में प्राप्त शुल्क।

कात्यायन के अनुसार मनु द्वारा कहे गए स्त्रीधन के अलावा स्त्री को किसी अनजान व्यक्ति से अथवा अपनी कला द्वारा प्राप्त सम्पत्ति या आय उस स्त्री का स्त्रीधन होते हुए भी उसके पति के नियन्त्रण में रहेगा। कात्यायन ने अध्यावाहनिक धन की परिभाषा करते हुए लिखा है

यत्पुनर्लभते नारी नीयमाना तु पैतृकात्।

अध्यावाहनिकं नाम तत्स्त्रीधनमुदाहृतम्।।[iv]

वहीं उन्होने अन्वाधेय की व्याख्या करते हुए कहा है विवाह के बाद पतिकुल से जो धन प्राप्त होता है वह अन्वाधेय कहलाता है। मनु के अनुसार ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य विवाह में प्राप्त सन्तानहीन स्त्री के छः प्रकार के स्त्रीधन का अधिकारी पति ही होता है।[v] वस्तुतः किसी भी अविवाहित तथा विधवा स्त्री को अपने मातापिता, सम्बन्धियों अपने पति या पति के सम्बन्धियों द्वारा प्राप्त होने वाला धन स्त्रीधन होता है लेकिन पति द्वारा उपहार में दी गई अचल सम्पत्ति स्त्रीधन नहीं हाती।

किसी भी स्त्री को सम्बन्धियों के अलावा अन्य किसी व्यक्ति द्वारा दिया गया दान या उत्तरदान, विवाह मण्डप में मुँह दिखाई पर अन्य व्यक्तियों द्वाराारा दिया गया धन उसका स्त्रीधन होगा। यदि कोई स्त्री अपनी मेहनत अथवा कला द्वारा समपत्ति अर्जित रती है जिसमें शारीरिक श्रम, नृत्य, गायन आदि सम्मिलित हैं उसका स्त्रीधन होगा लेकिन स्त्री द्वारा इस प्रकार अर्जित सम्पत्ति पर उसके पति का नियन्त्रण रहेगा। यदि किसी स्त्री के पास नकद अथवा जेवर के रूप में स्त्रीधन है तो उससे खरदी गई अचल सम्पत्ति भी स्त्रीधन होगी। यदि उसे अचल सम्पत्ति या अन्य प्रकार की सम्पत्ति से आय होती है तो उस संचित आय से खरीदी गई सम्पत्ति उसका स्त्रीधन होगा।

यदि स्त्री को पारिवारिक समझोते में स्त्रीधन त्यागकर कोई सम्पत्ति मिलती है तो वह उसका स्त्रीधन होगा। यदि कोई स्त्री सरकार की सम्पत्ति के अलावा किसी सम्पत्ति पर 12 वर्ष तक आधिपत्य रखती है तो प्रतिकूल आधिपत्य के आधार पर वह सम्पत्स्सि उसका स्त्रीधन होगा। 1937 से पूर्व विधवा, पुत्र की विधवा, पौत्र की विधवा को अपने पति की मृत्यु पर सहदायिक सम्पत्ति में से भाग प्राप्त करने का अधिकार नहीं था यदि कर्ता उनके भरण पोषण के लिए कोई सम्पति दे या अन्य न्यायालय की डिक्री, अनुबन्ध या समझोते द्वारा किसी स्त्री को भरण पोषण मिल रहा हो तो वह सम्पत्ति या भरण पोषण की राशि से संचित आय उसका स्त्रीधन होगा। किसी भी स्त्री को विवाह के समय मिलने वाला शुल्क या वधू को मिलने वाले उपादान उसका स्त्रीधन कीलाते हैं। स्त्री को स्त्री से उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति या पिता के घर से उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति उसका स्त्रीधन कहलाती है। कुछ लोग इसे स्त्रीधन न मानकर स्त्री सम्पदा मानते हैं।

एक स्त्री जो वयस्क एवं स्वस्थचित्त है अविवाहित या विधवा होने पर समस्त स्त्रीधन का किसी भी प्रकार व्यय, हस्तान्तरण आदि का अधिकार रखती है। आसुर आदि तीन विवाहों में स्त्री के लिए जो धन दिया गया है

सन्तानहीन उस स्त्री के मरने पर ये छः प्रकार का स्त्रीधन उसके माता पिता का होता है।[vi] स्त्रीधन पर किसी का भी अधिकार तय करने से पूर्व विवाहित स्त्री के सन्दर्भ में उसके स्रोत का ज्ञान अपेक्षित है। यदि पति द्वारा उपहार है, विवाह के दौरान अपने कौशल, कला द्वारा अर्जित आय है तो प्राचीन विधि की दायभाग शाखा एवं मिथिला शाखा में पति की अनुमति के बिना ऐसे धन के व्यय के स्त्री को अधिकार प्रदान नहीं किए गए। सौदिव्य, योजक व अयोजक स्त्रीधन पर स्त्री का पूर्ण अधिकार होता है केवल बुरे वक्त यथा बीमारी, जेल, अकाल, दैविक आपदा आदि में या पति द्वारा किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के सम्पादन हेतु पति उसका उपभोग कर सकता है लेकिन स्थिति बेहतर होने पर लौटा सकता है।

किसी भी स्त्री की मृत्यु के बाद स्त्रीधन उत्तराधिकार द्वारा उस स्त्री के उत्तराधिकारियों को मिलता है जिसमें पुरुष उत्तराधिकारी तथा किसी(बम्बई) शाखा में स्त्री उत्तराधिकारी का भी उस पर पूर्ण अधिकार होगा। अन्य शाखाओं में स्त्री उत्तराधिकारी का आजीवन अधिकार रहेगा और उस स्त्री उत्तराधिकारी की मृत्यु के बाद वह सम्पत्ति उस उत्तराधिकारी को जाती थी जो कि स्त्रीधन की स्वामिनी का उत्तराधिकारी है। स्त्री के मातृपक्ष एवं पितृपक्ष के बन्धुओं द्वारा दिया गया धन शुल्क और अन्वाधेयक धन भी स्त्रीधन कहलाता है। स्त्री के बिना सन्तान मरजाने पर पति आदि बान्ध स्त्रीधन ग्रहण करते हैं।[vii] अविवाहित स्त्री के उत्तराधिकारी क्रमशः सहोदर भाई, माता, पिता, माता पिता के निकट सम्बन्धी, माता–पिता के उत्तराधिकारी अर्थात् पिता की पुत्री या पिता की पुत्री का पुत्र पिता के भाई के पुत्र से पूर्व सम्पत्ति का अधिकारी होगा, सौतेली माँ मातृष्वसा से पहले उस सम्पत्ति की अधिकारी होती थी।

शुल्क रूप में प्राप्त स्त्रीधन के सम्बन्ध में मृतक विवाहित स्त्री के उत्तराधिकारी(दायभाग को छोड़कर) सहोदर भाई, माता, कही कहीं पिता, पिता के उत्तराधिकारी उसके अधिकारी होते हैं। ब्राह्मादि मान्य विवाह के सन्दर्भ में विवाहित स्त्री की मृत्यु पर उसकी पुत्रियां स्त्रीधन की अधिकारी होती हैं। उनमें भी पहला अधिकार अविवाहित पुत्री का होता है। यदि सभी पुत्रियां विवाहित है तो जो कम साधन सम्पन्न है पहले उसे प्राथमिकता दी गई है। पुत्री के अभाव में उसकी पुत्री, पुत्री का पुत्र, उसके अभाव में पुत्र, पौत्र, पति, पति के उत्तराधिकारी, माता पिता के रक्त सम्बन्धी क्रमश एक एक के अभाव में उत्तरा धिकारी कहे गए हैं।

अमान्य विवाह के सम्बन्ध में विवाहित स्त्री की मृत्यु पर उसके स्त्रीधन को प्राप्त करने के अधिकारी उसकी पुत्री, पुत्री की पुत्री, पुत्री का पुत्र, पुत्र, पौत्र, माता, पिता, पिता के उत्तराधिकारी किसी के भी न होने पर पति के उत्तराधिकारी होते हैं।

द्योतक सम्पत्ति जो कि विवाह के समय रिश्तेदारों व अनजान से मिली हो के उत्तराधिकारी अविवाहित पुत्री, विवाहित पुत्री, विवाहित जिसके पुत्र होना सम्भव हो, विधवापुत्री जिसके सन्तान हो, विवाहित सन्तानहीन पुत्री, विधवा निःसन्तान पुत्री, पुत्र पुत्री का पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, सोतेलापुत्र, सौतेले पुत्र का पुत्र, पति, भाई, माता, पिता, पति का छोटा भाई, पति के भाई का पुत्र जामाता, पति के उत्तराधिकारी अथवा पिता के उत्तराधिकारी क्रमशः पहले पहले के अभाव में स्त्रीधन के अधिकारी होते हैं। पिता से विवाह के बाद प्राप्त सम्पत्ति के सम्बन्ध में अविवाहित पुत्री, पुत्र, विवाहित पुत्री, जिसके पुत्र हो या होने की समभावना हो, सन्तानहीन या विधवा पुत्री, पौत्र, दोहित्र प्रपौत्र, सौतले पुत्र सौतेले पुत्र का पुत्र, भाइ मातापिता पति या पति के उत्तराधिकारी ही क्रमशः अधिकारी होते है। सम्बन्धियों से विवाह पूर्व या विवाह के बाद मिली अद्योतक सम्पत्ति के अधिकारी पुत्र, अविवाहित पुत्री, विवाहित पुत्री पुत्र या पुत्र होने की समभावना पर, पौत्र, दोहित्र, प्रापौत्र, सौतेला पुत्र या पौत्र,विवाहित निःसन्तान पुत्री या विधवा पुत्री होते हैं। 1956के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के धारा 14(2) के अपवादों को छोड़कर किसी भी हिन्दू स्त्री को कहीं से भी किसी

साधन द्वारा प्राप्त आय व सम्पत्ति उसकी मृत्यु के बाद 15 एवं 16 में प्रतिपादित नियमों के आधार पर उत्तराधिकारियों को प्राप्त होती है।

इस प्रकार इस अध्ययन से ज्ञात होता है कि उत्तराधिकार के सम्बन्ध में भारतीय कानून प्राचीन धर्मशास्त्रीय प्रावधानों का अनुगमन करता है।

***प्रोफेसर**
भाषाविज्ञान
राजकीय महाराज आचार्य संस्कृत महाविद्यालय,
जयपुर (राज.)

संदर्भ ग्रन्थ सूची

i मनुस्मृति 9/194
ii याज्ञवल्क्यस्मृति व्यवहाराध्याय 143
iii याज्ञवल्क्यस्मृति व्यवहाराध्याय 148
iv मनुस्मृति 9/194 की मन्वर्थ व्याख्या
v मनुस्मृति 9/196
vi मनुस्मृति 9/197
vii याज्ञवल्क्यस्मृति व्यवहाराध्याय 144